अधिलैन

सर्वदानन्द वर्मा

इलाहाबाद

O152,3SRV
H42
2656/03

मूल्य १)

इंडियन प्रेस लिमिटेड,
प्रयाग

कवि

पहले इसे पढ़िये

आज से कुछ ही वर्ष पहले लखनऊ से वयोवृद्ध, आदरणीय श्री माधवप्रसाद खन्ना की आरम्भिक सहायता तथा कृपा से हमने स्त्रियोपयोगी एक पत्र निकाला था—'कला'। हिन्दी-भाषा-भाषी जनता को आज फिर से यह बतलाने की ज़रूरत नही कि उस अल्पजीवी 'कला' ने नारी-जाति को जागृत करने तथा उनमे कला की ओर रुझान भरने मे किस अश तक सफलता पाई थी। प्रसिद्ध चित्रकार श्री कमलाशकरसिह उसके लिए दिवा-निशि जी तोड मिहनत कर उसके प्रत्येक पृष्ठ को चित्रो से सजीव बनाते थे। निराला, महादेवी वर्मा, प्रदीप, जी० पी० श्रीवास्तव, अमृतलाल नागर आदि कलाकार अपनी कविता तथा कहानियो-द्वारा उसका सौन्दर्य बढाते थे। 'कला' के डिज़ाइनो के पृष्ठ तो अब तक पाठिकाओ के पास सुरक्षित होगे। हम गर्व नही करते, हमारे इस कथन की प्रमाण तो पुरानी पत्र-पत्रिकाओ की वे फाइले है जिनमे हमारे और हमारे प्रयास के विषय मे प्रकाशित हुआ है।

'कला' के प्रकाशन के समय हमारा परिचय कुछ और लेखको से भी हुआ। वे लेखक, जो धूल मे हीरे की तरह दबे हुए

थे। श्री सर्वदानन्द वर्मा उनमे से एक है। वे तब कही लिखते नही थे अत स्वभावत ही उन्हे कोई नही जानता था। आज, दो-तीन वर्षों के अल्प समय मे ही, कम आयु मे ही अपनी जिस प्रखर और सर्वतोमुखी प्रतिभा के बल पर श्री सर्वदानन्द हिन्दी के इने-गिने 'प्रगतिशील' लेखको की कोटि मे गिने जाते है और उपन्यासकारो और कवियो मे उनका जो श्रेष्ठ-स्थान है, उसका तब बीज ही उनमे आरोपित था। हमने उनकी प्रतिभा को तभी पहचाना था और 'कला' के पृष्ठो मे उन्हे प्रमुख स्थान दिया था। किन्तु तब हम दूर से ही समझते थे, वे कोई बहुत बडे विद्वान् होगे, स्त्री-समस्याओ के विशेषज्ञ (क्योकि वे 'कला' मे इसी विषय पर लिखते थे) जो आज भी उनकी रचनाओ का प्रधान 'थीम' है, बहुत गम्भीर और शान्त व्यक्ति होगे। तब तक उनसे पत्रो का ही परिचय था। प्रत्यक्ष परिचय तो हुआ तब जब वे एक फिल्म-कम्पनी के सिलसिले मे लखनऊ रहने आये। तभी हमने जाना कि वे एक सफल अभिनेता भी है। हम कहे कि प्रत्यक्ष परिचय से हमारी कल्पना को कुछ चोट लगी तो अनुचित न होगा। हमने देखा, वे विद्वान् है, स्त्री-समस्याओ पर धारा-प्रवाह रूप से बोल सकते है किन्तु गम्भीरता और स्थिरता उनमे जरा भी नही। एक सरल, सुन्दर, अत्यधिक भावुक और प्रेमी-हृदय के वे युवक है, सभ्य और सुसस्कृत। गम्भीरता उनसे कोसो दूर है, बात-बात पर हँसी-मजाक और बच्चो-सी उछल-कूद। शृगार और वेशभूषा के

बेहद शौकीन, दूसरी ओर, जाडो से ठिठुरती रात मे अपने तन का वस्त्र उतारकर दूसरे ज़रूरतमन्द लोगो को देते भी हमने उन्हे देखा है। गहरा और अन्तरङ्ग परिचय उनसे होने पर हमने पाया कि वे एक ऐसी पहेली है जिसे उनके जीवन-काल मे तो शायद ही कोई बूझ सके, मरने पर भी इस 'मिक्सचर ऑव ओपोजिट्स' को कोई समझ पाएगा, इसमे सन्देह है। 'घर की मुर्गी साग बराबर' के अनुसार अभी तो हमने यही पाया है कि उनके परिचित, मित्र और सम्बन्धी भी उन्हे ठीक-ठीक पहचान नही सके। 'रीड' नही कर सके। यही कारण है कि गलतफहमियाँ उनके जीवन मे बहुत हुई है।

'अर्घ्यदान' का प्रकाशन भी उनकी भावुकता का एक प्रमाण है। हम उसे कह देना चाहते है। श्री सर्वदानन्द आजकल केवल साहित्य पर ही जीवन-निर्वाह के लिए निर्भर है। वे कोई पूँजीपति नही, यह सभी जानते है। हमने अक्सर देखा है, उनके पास कभी एक पैसा तक नही होता और वे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते है। कोई पूछ बैठता है (हमने भी अक्सर पूछा है) तो झुँझला पडते है—पाठको को लिटरेचर चाहिए, 'कला' चाहिए, दिमाग का भोजन चाहिए जिसे मज़े से कुर्सी पर पॉव फैलाकर वह उपभोग कर सके। पास मे सिगरेटो से भरी टिन हो, बगल मे योग्य बीवी या प्रेयसी हो, सब सुविधा हो और वे उपन्यास हाथ मे लेकर या कविता-पुस्तक के पृष्ठ खोलकर कलाकार की सूझ और कल्पना

पर झूम-झूम उठे। यह कोई कम्बख्त नही देखने आता, नही देखना चाहता कि कलाकार स्वय किस तरह एक-एक इच्छा के लिए तरस-तरसकर मरता है, उसे भी रोमास की जरूरत होती है। और चिढकर अगर यही सब लिखो तो लोग चीखेंगे—यह कला नही है, साहित्य नही है, यह नही, वह नही है।' खैर, तो हम यही दिखलाना चाहते है कि कला-मन्दिर द्वारा 'अर्घ्यदान' के प्रकाशन मे, यह स्थिति उनकी होते हुए भी, उनकी भावुकता का ही हाथ है। उन्हे इधर कुछ रुपयो की सख्त जरूरत थी, कुछ पारिवारिक बाते थी। दो पुस्तके अपनी वे कापीरॉइट सेल करना चाहते थे—एक छोटा-सा उपन्यास और दूसरी यही 'अर्घ्यदान'। हमने जिस समय उन्हे पुस्तक के लिए 'अप्रोच' किया उस समय दूसरे प्रकाशको के अधिक रुपयो के 'ऑफर' उनके पास थे किन्तु मित्रता की भावुकता मे उन्होने इसे हमे ही दे दिया। अपना नुकसान कर हमे लाभ पहुँचाना उन्होने अभीष्ट समझा। किन्तु यह सर्वदानन्द की भावुकता का कोई नया प्रमाण नही। हमने देखा है और जानते है—दूसरो के लिए अपना अहित कर डालना उनकी सदा की बान है।

यह तो हुई उनके व्यक्तिगत जीवन की थोडी-सी झाँकी, अब थोडा-सा उनका साहित्यिक जीवन भी देखे। यह सत्य है कि किसी के साहित्यिक जीवन का वास्तविक और सम्यक् अध्ययन तब तक नही हो सकता, जब तक उसकी सब चीजे सामने रखकर

न देखी जायँ। सर्वदानन्द का भी साहित्यिक जीवन प्रयोगों से भरा है, और अन्त मे वे जिस विचारधारा तक पहुँचे है उसका प्रमाण उनकी हाल की कविताएँ और उपन्यास है। यह भी सत्य है कि गद्य-रचनाओ मे वे अधिक खुलकर सामने आये है, यद्यपि उनका स्वय का मत है कि युग युगावधि से निर्धारित 'कला' और 'साहित्य' की धारणा लेकर वे नही चलते। जो साहित्य और जो कला जीवन के निकटतम होकर नही चल सकते, वे निर्जीव है, अस्वस्थ है। 'साहित्य-सन्देश' के उपन्यास-अक के अनुसार सर्वदानन्द 'समाज के ध्वसक रूप मे' लोगो के सामने आये है, किन्तु हमारा विचार है कि इस ध्वस और विनाश के पीछे जो नव-सृजन और नव-निर्माण का चित्र उन्होने पेश किया है वह किसी ने नही देखा। बीमार को औषधि कडवी लगती है किन्तु समझदार लोग इससे औषधि देना ही नही वन्द कर दे सकते। ईश्वर तक पहुँचने के लिए विभिन्न सम्प्रदाय है, मत है किन्तु सबका उद्देश्य उसी ईश्वर को पाना है। इसी तरह मानव-कल्याण और 'सत्य, शिव और सुन्दर' की प्रतिष्ठा के लिए भिन्न-भिन्न विचारको के भिन्न-भिन्न उपाय हो सकते है, कौन सही है कौन गलत, यह तो आनेवाला समय ही बतला सकता है। आज की लड़खडाती दुनिया और सक्रमण-काल मे किसी एक मत की पुष्टि नही की जा सकती। हम यही बतलाना चाहते है कि सर्वदानन्द के बाह्य विध्वसक रूप के पीछे एक मानव-हितेच्छु हृदय है जिसे पहचानने की आवश्यकता है। यह अवश्य है कि

इस हितेच्छा के लिए वे किसी तरह का प्रतिबन्ध, किसी तरह का भेदभाव, वैषम्य मानने को तैयार नही। उनके सामने केवल एक उद्देश्य है, एक 'मोटो' है—ससार के जन-जन को सम्मानपूर्वक जीने का हक है। स्त्री-पुरुष, शोषक-शासित सब समान है। आज के युग के पूँजीवाद के आधार पर जो विषमता की मान्यताएँ और सीमाएँ है, वह जायँगी और तभी मानव परितृप्ति और सन्तोष का अनुभव करेगा।

'अर्घ्यदान' मे हम दूसरे ही तरह की कवितायें दे रहे है। पाठक देखेगे कि ये अधिकाश रोमाटिक है किन्तु रोमान्स के प्रति नया 'आउट-लुक' है। 'हाय-हाय' वाला प्रेम यहाँ भी नही है, जीवन को नष्ट करने की अपेक्षा आगे बढाने की प्रेरणा है। हम इस कलाकार की विरुदावली और गाना चाहते थे पर रहने देते है। जो कुछ भी हमने ऊपर कहा है वह दो कारणो से कहा है। एक तो 'अर्घ्यदान', उसके रचयिता और 'कला-मन्दिर' का सम्बन्ध पाठको को बतलाना था, दूसरे एक परम्परा को हम तोडना चाहते थे। अब तक सदा यही देखा गया है कि प्रकाशक अपने वक्तव्य मे केवल अपनी बात ही कहता है, यह भूल जाता है कि जिस कृति को लेकर वह जनता के सामने आ रहा है उसके कृतिकार का परिचय भी जनता को कराना उसका कर्त्तव्य है, भले ही वह कृतिकार कितना ही, अपने तईं, ख्यात हो। हम अपने प्रकाशनो मे यही करेगे। साथ ही, कृतिकार का वही पहलू हम जनता को

दिखायेगे जो पहले सामने नही आया। हम जानते है कि इसके लिए हमे कृतिकार के जीवन मे गहरे उतरना होगा किन्तु हम अपने भरसक कुछ उठा न रक्खेगे। सर्वदानन्द को हम जो कुछ और जितना जान पाये है उसकी झाँकी-मात्र हमने पाठको को करा दिया है, अभी उनके वारे मे बहुत कुछ कहा जा सकता है। हमारी आगामी पुस्तक होगी पडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की 'चाबुक', जो उनके निवन्धो का सग्रह है । उसके प्रकाशकीय मे हम 'निराला' के जीवन को नये दृष्टिकोण से पाठको के सामने रखने का प्रयास करेगे।

पूँजी के अभाव से जब हमने 'कला' का प्रकाशन बन्द कर दिया था तभी से हम खाली-खाली लग रहे थे। कुछ ठोस काम करना चाहते थे किन्तु उपयुक्त अवसर और साधन नही थे। आज 'अर्घ्यदान' लेकर हम पुन क्षेत्र मे उतर रहे है । हमारा विश्वास है कि आगे और भी सुन्दर कलाकृतियो से हम आपकी सेवा कर सकेगे। 'कला' भी पुनरुज्जीवित होगी, इस वार अधिक ठोस और स्थायी रूप मे। हमे आपकी सहायता और कृपा चाहिए। इस महँगी के ज़माने मे, जब कागज़ तक मिलना कठिन हो रहा है, हम जितने सुन्दर रूप मे आपको 'अर्घ्यदान' दे रहे है वही हमारी सुरुचि और चेष्टा का परिचय देता है ।

हम इडियन प्रेस के प्राण श्री हरिकेशव घोष को धन्यवाद दिये विना नही रह सकते जिन्होने निजी देख-रेख मे, स्नेहवश,

इसे लगभग एक सप्ताह मे ही छापकर तैयार कराया। श्री सर्वदानन्द को हम क्या कहे—वे हमारे धन्यवाद की सीमा के बाहर है। हम उन्हे दीपक दिखाना नही चाहते।

कला-मन्दिर —उमाशंकरसिह

दारागज, प्रयाग।

मेरी बात

पद्य मे गद्य कुछ सही नही लगता किन्तु अनिवार्य-सा लगता है।

अभी कुछ ही वर्ष पहले की बात है। तब अपने पास कुछ पूंजी तो थी नही, 'दूसरो के धन पर लक्ष्मीनारायण' बनने की साध ही अधिक थी। ख्यात कवियो की पेटेण्ट रचनाये अपनी कहकर उन लोगो को सुनाया करता था जो तब तक साहित्य का क, ख, ग जान रहे थे। भगवतीचरण वर्मा की एक पुरानी रचना तो अपनी कहकर एक बार सुमित्रा जी (आज-दिन महिला कृतिकारो की एक सफल प्रतिनिधि) को भी सुनाई थी जिस पर आज स्वय हँसी आती है।

वह बचपन का युग बीता और जीवन मे, यौवन के साथ साथ, यौवन के अरमान और पूर्ति के साधन आये। लगा कि दुनिया रगीन है। कविता मन मे स्वत छूम छनन कर नाच उठी, दूसरो के स्थान पर अपना घायल हृदय ही शब्द बनकर कागज पर उतरने लगा, स्वर बनकर कण्ठ से फूटने लगा।

काश, मेरा वह रगीन स्वर्ग स्थायी होता!

मायाभवन, तब, एक दिन गिरकर नष्ट हो गया। प्रेयसी के कमल-कोमल तन के पीछे से झाँकता हुआ ककाल मन मे उभर उभर आया ... सब धोखा, सब छल, सब स्वप्न !

उसी समय, कही से कोई कानो मे कह गया, जीवन इतना ही तो नही है ! प्रेम और प्यार सब कुछ हो, रोटी नही बन सकता। आज-दिन के समाज मे भरे पेट की अनिवार्य आवश्यकता बनकर रह गया है रोमास ! जीवन के इस पूर्णता-पथ की राह मे भी अबाधता नही, पग-पग पर काँटे है, रोडे है। सँभल कर न चलो तो कहना पडता है—आह !

मन मे तूफान आये, बादल बनकर आखो मे छाये, पानी बनकर बरसे, धूल बनकर पावो से रौंदे गये और आग बनकर भी, कदाचित्, धधक उठे। पचतत्त्वो से निर्मित शरीर की भाँति मेरी काव्य-साधना भी पाँच तत्त्वो से विनिर्मित है—तूफान, बादल, पानी, धूल और आग !

आग मेरी अभी धधक रही है, यज्ञ-कुण्ड मे आहुतियाँ दी जा रही हे। यज्ञ अभी सम्पूर्ण नही हुआ।

'अर्घ्यदान' के रूप मे आग के पहले का मेरा काव्य-सकलन है। कैसा है, यह आप जाने। एक बार मन किसी भी रूप मे खोल देने पर फिर उस पर ठहर कर सोचने-विचारने का अवकाश, भागते हुए जीवन मे, मुझे नही। अभ्यास भी नही।

—सर्वदानन्द वर्मा

कुमारी शैल, बी० ए०

बहन नील

प्रणय-प्रयास की यह
स्मृति तुम्हें भेंट करता हूं।
स्वागत है, अनाहूत की हांसी।

— तुम्हारा,
रांगेय भैया

क्रम

कविता		पृष्ठ

अर्घ्यदान

मुझको न जीवन भार है।

मैं हूँ स्वय मे लय, मुझी मे
लय निखिल मसार है।
मुझको न जीवन भार है।

मैंने न माना सुख कभी,
मैंने न जाना दुख कभी,
मैंने अमिय को धर अधर,
विष से न मोडा मुख कभी।

मेरा वियोग बना अमर,
मेरा चिरन्तन प्यार है।

पल भर रुका, कुछ गा लिया,
कुछ खो दिया, कुछ पा लिया,
जग से रखा नाता यही,
आँसू बहे मुसका दिया।

मै बह चला गति मे स्वत
फिर पार क्या, मझधार है ?

मुझको न प्रिय का ज्ञान
मेरा न कुछ अरमान है,
मै पूर्ण हूँ निज मे, 'अहम्'—
मेरा विशाल, महान् है।

मैं काम अपना कर रहा,
फल की मुझे चिन्ता नही—
यह देखना जग का नियम,
क्या जीत है क्या हार है।

मुझको न जीवन भार है।

बोल मधुर बोल !
पुलक फिरत सजनि, रजनि
अवगुण्ठन खोल !

सावन घन मगन गगन
उन्मन मन आज।
लाज सुमुखि, भ्रम है
यह बधन की लाज !

मानिनि, यह मौन दुसह,
घोल, अमिय घोल !

डोलत मृदु मन्द पवन
मुग्ध गन्ध - भार,
आरत कवि स्वागतरत
खोल बन्द द्वार।
रंगिनि, सरसिज पग धर
मन - मन्दिर डोल।

श्यामा, प्रिय, नर्त्तनरत
किंकिनि पग मन्द—
मन्द बजत, मुक्त चरण
मुक्त छन्द बन्द।

मुक्त भूल, मुक्त आज
मानस - हिन्दोल।
बोल मधुर बोल।

——

प्रिय, कुछ पल तो सुख से बीते !
तोडो, तोडो ममता बन्धन—
माना, मै हारा तुम जीते !

यह अथक प्रतीक्षा, अधकार,
पलको मे घिर आना बादल।
यह मन का छल अब बन्द करो,
दु:सह है मेरे चिर-चचल !

कुछ ही क्षण तो जीना है—
चलने दो मुझको रीते-रीते !

अपने को मैं छल पा न सका,
सच, एकाकी चल पा न सका।
यह भी है मेरा भाग्य, कि मैं—
पल भर को भी कल पा न सका।

यह भी सच है, मैं भूल रहा, निज
जीवन के मधुक्षण बीते!

अब तो दुनिया से राग नहीं,
सुन्दरियों से अनुराग नहीं।
अब तक तो चोटें ही खाईं—
रह जायँ न उनके दाग कहीं!

अब तो पीने दो गरल ज़रा—
युग बीते मधु पीते-पीते!

——

बहुत दिनो के बाद
तुम्हारे नयनो का पानी देखा !
बहुत दिनो के बाद
आज मैने तुमको रानी, देखा !

कृशतन मे दृढ वीतराग
योगी साधना-निरत देखा !
आत्म-विसर्जन दर्शन का
वह तप पूत ज्ञानी देखा !

खिलखिल कर हँसना देखा
औ' झर-झरकर रोना देखा!
अपने ही अस्तित्व ज्ञान का
'पर' में लय होना देखा!

देखा सत्ताहीन, अवश
परितुष्टि, आत्म में मिट जाना!
सतत मुखरता, विवश मौन
भाषा में मिल, खोना देखा!

अब न देखने को बाकी
कुछ है इतिहास, तुम्हारा प्रिय!
जो कुछ शेष, स्वयं कह देगा
जग-उपहास तुम्हारा प्रिय!

——

रानी ! मत गीतो मे उतरो—

इनमे क्रन्दन का राग घना,
इनमें साकार बना सपना,
इनमे तरुणी आशा सोई,
अस्तित्व मिटा करके अपना।

तुम तो जलती-सी दीप-शिखा—
मेरे उर का तम-भार हरो।

रानी ! मत गीतो मे उतरो—

चिर-बन्धन फूलो की माला—
बनकर आई युग-युग परिचय,
लाई मॅंग मे तृष्णा दुर्जय,
संकेत मिला, अस्तित्व-शून्य हम,
मै तुममे, तुम मुझमे लय।

पर सच कहना रानी! उस पल—
क्या भूल गई आगन कानन?
चिर-बन्धन फूलो की माला—

हम दोनो की है भिन्न राह—
नियमित पथ पर चलते जाना,
हमने जीवन की गति माना,
फिर हम किसको दे दोष, कहो,
जब बन्धन मे ही सुख माना!

परवशता की अन्तिम सीमा—
बस अमर रहे री, आत्म-दाह!
हम दोनो की है भिन्न राह—

———

विकल सपनो से भरी यह रात !

कवि न डर, गिन उँगलियो के पोर पर पल,
बीत जायेगी अँधेरी रात !

अर्घ्यदान

इस जगत से हार खाई अनगिनत,
फिर भी न समझा भूल।
स्नेह-रस छलछल हृदय तेरा रहा
नित, विश्व के पथ की अकिंचन धूल।

आज फिर तृष्णा नगर की ओर
चलने का उपक्रम व्यर्थ।
सोच ले पल भर, बिछे हैं राह मे,
सर्वत्र तीखी दृष्टियो के शूल।

आज सह ले, बिखर जाने दे अलक्षित,
खिल हृदय-जलजात।
कवि न डर, दो पल रहेगी, बावली-सी,
मदिर सपनो मे भरी यह रात।

कौन है तेरा, सुनेगा जो व्यथा की
यह कहानी, बोल?
कौन है, जिसको दिखाने तू चला निज
घाव उर का खोल?

एक स्वर से हँस उठेगा जग, करेगा
व्यर्थ ही उपहास।
कौन है, देगा पिपासित कण्ठ मे
दो बूँद मधु की घोल?

कल्पना के जाल बुनकर रात भर,
क्या मिल सकेगा प्रात?
क्षीण आशा-दीप लेकर कवि, कुटी मे
क्यो विलग बैठा, अँधेरी रात?

आयगा फिर कर्मरत, कर्तव्य-निरत
कठोर स्वर्ण विहान।
जब मधुर यह स्वप्न टूटेगा, जगेगा सत्य,
जागेगा 'अह' का ज्ञान।

फिर कहाँ होगी प्रिया? होगा कहाँ
सपना? कहाँ वह प्यार?
विश्व के संघर्ष ने उस पल, अरे कवि
जब कठिन होगा चुराना प्राण!

रात भर की यह व्यथा फिर पालने में,
कौन सुख की बात?
बीत जाने दे सलोनी, कसकती सी,
रसमयी, ज्वालामयी यह रात!

आज दूर तुम, दूर तुम्हारे
स्वर, रानी सुकुमार।

अर्घ्यदान

मञ्ज़िल दूर, थका था मग में
यह पथी, अनजान ।
कहीं दूर से छेड़ दिया था
तुमने मोहक तान !

आज अनादृत कौन सुनेगा
कानो की मनुहार ?

यह उदास सन्ध्या, मेरी भी
सजग मुखरता मौन ।
वातायन में झांक,
चन्द्रवर्तुल के बोला कौन ?

आज वहा ना पथी, 'पत्थर' पर
यों दृग - जल - धार ।

कब आकण्ठ तृप्ति ले आई,
किस दिन पूरी प्यास ?
मैंने तो अंगारों का ही
देखा हास - विलास !

जीवन भर जलते जाना ही,
क्या कहलाता प्यार ?

आज दूर तुम, दूर तुम्हारे
स्वर, रानी सुकुमार !

अपने को इतना भूल सुमुखि,
मत मुझ दुर्वल को प्यार करो।

अर्घ्यदान

मैं एक चिरन्तन प्यासा हूँ,
कब मेरी तृष्णा बुझ पाई ?
मेरे नन्हे से आँगन में,
कब शशि की किरणें लहराई ?
अंगार सदा बरसा नभ से,
धरती से उफना भू-कम्पन !
देखोगी, कितना घायल है,
मुझ चिर-भूखे मानव का मन ?
मैं मरघट के पीपल तरु-सा,
जलती निर्धूम चिता अनगिन !
मैं मौन विरागी, देख रहा
बनते-मिटते सपने अनुदिन !

रानी ! मत मेरे गीतों पर
अपने आँसू बलिहार करो।
अपने को इतना भूल सुमुखि,
मत मुझ दुर्बल को प्यार करो।

मेरा अपराघ यही केवल,
मैंने यौवन का मान किया।
मेरा अपराध यही केवल,
मैंने जीवन का गान किया।
मेरा अपराघ यही, मैंने—
सुन्दरता की कीमत जानी।
मैं देख कभी न सका नारी के
नयनों मे छल-छल पानी।
उस दिन जग के न्यायालय मे,
मेरी जब तीक्ष्ण पुकार हुई!
मैं सिमटा, घबराया पहुँचा,
उस दिन पौरुष की हार हुई!

सच कहता हूँ, मुझ दीन पराजित से,
न रभस अभिसार करो।
अपने को इतना भूल सुमुखि,
मत मुझ दुर्बल को प्यार करो।

है एक यही सन्देश सखी,
मेरी अलमस्त जवानी का।
है एक यही बस आदि अन्त
जग की सब प्रणय कहानी का।
चुप-चुप रह-रह तिल-तिल मिटना,
मानव को यह वरदान मिला।
जीवन्त पिपासा पर अपने को—
खोने का अभिमान मिला!
पर तुम भोली हो, कहता हूँ,
बचकर आना इस राह प्रिये!
है कठिन प्रेम का पन्थ, अरे,
दुस्तर है पगली चाह प्रिये!

मत पल भर के पागलपन पर,
अपना विनष्ट ससार करो।
अपने को इतना भूल सुमुखि,
मत मुझ दुर्बल को प्यार करो।

यह पावस की रिमझिम,
नर्त्तनरत मुक्त-कुन्तला मेघपरी।

नूपुर पग रुनझुन रन अमन्द
बज रहे, मुक्त गति, मुक्त छन्द—
लो, वरुण-प्रिया सरसिज पग धर,
अंबर से अवनी पर उतरी।

मृदु गन्ध भारनत मन्द पवन,
जागा जन जन मन अभिनन्दन—
आषाढ भरे दृग में कवि के,
फिर कौन व्यथा कसकी गहरी?

उस ओर गरजता है अंबर,
दूरागत पी-पी क्रन्दन स्वर—
कवि का मानस कम्पित थर थर,
वाणी घन बादल देख डरी!

कवि मौन, आज अवरुद्ध गान,
यह मान व्यर्थ अभिमान, प्राण!
नैशान्धकार घूँघट उघार,
शशिमुख सिगार दिखला पल री!

साधना-दीप निर्वाण आज,
फिर कौन, कहाँ की, तन्वि! लाज—
विष-सा दुराव यह त्याग, देख,
घन सघन अमिय रस-धार झरी!

यह पावस की रिमझिम,
नर्तनरत मुक्त-कुन्तला मेघपरी!

खोलकर पुलकित मुँदे दल,
खिल उठा पाटल विजन में—
मैं उसी की व्यर्थ सुन्दरता !

दलित प्रिय-पद-चिह्न ने,
विस्तृत डगर का रेणुकण जो—
मैं उसी की धन्य-सी लघुता !

दूर तक फैले क्षितिज में,
लक्ष्यहीन अशान्त पछी—
मैं उसी की गति विकल अति धीर !

घाव अनगिन ले, बिना
उपचार, राही जो अकेला—
मैं उसी घायल हृदय की पीर !

जो सनेहविहीन दीपक,
झिलमिलाता प्रात मे—
मै लौ उसी की क्षीण !

तृषित चातक की विफल
तृष्णा, अपूरित जो रही नित—
मै उसी की टीस, व्याकुल दीन !

सद्य-विधवा के धुले सीमत
के सिन्दूर की मै—
चिर सजल-सी साव !

मुँदी पलको मे प्रिया के
बन्द, परदेसी पिया की—
बावली-सी याद !

विश्व-जीवन से विलग;
वचित कुटी मे साधनारत—
दृढव्रती का ध्यान !

तरुणि के कम्पित अधर का
प्रथम ही, अन्तिम बना जो
वही चुम्वन-दान !

इस वियोगी के निरन्तर
उमडते अतलात की कव—
हो सकी है माप ?

हृदय मानव का मिला,
अभिशाप यह, कव मिट सकेगा—
भाल से यह पाप ?

आज वासना जगी हृदय मे
नग्न, विकल, निर्बन्ध प्रिये ।
रोके कौन? उठा है मानव,
गन्धमुग्ध, मधुअन्ध प्रिये ।

आज सजनि, नस-नस में सिहरन,
रोम-रोम मे पागलपन ।
अणु-अणु मे विद्युत्, कण-कण मे,
एक अजब मस्ती, तडपन ।
एक-एक धडकन मे हिय की,
शत-शत नागन-सी ऐंठन ।
एक-एक चितवन में, भूखी—
प्यासी तृष्णा का नर्तन ।
उच्छ्वासो मे, सुमुखि, भरी है,
ज्वाला की अति तीव्र तपन ।
अश्रु नही री, बरस रहे है,
अनियन्त्रित सावन के घन ।

सयम, ज्ञान, ध्यान, साधन की—
ज्योति पडी है मन्द प्रिये !
रोके कौन ? उठा है मानव,
गन्धमुग्ध, मधुअन्ध प्रिये !

इतनी प्यास जगी जीवन मे,
क्यो न महासागर पी लूँ?
इतनी आग लगी यौवन मे,
जल-जलकर कैसे जी लूँ?
अरे, रोक मत, तूफानो से
टकराने मै जाता हूँ।
वक्ष प्रलय का चीर,
ताण्डव-सा करने मै आता हूँ।
सावधान, ओ ज्ञानी!
डगमग जग की सारी पावनता।
आज विकल तृष्णारव से
भर उठी, विश्व की निर्जनता।

आज लालसा का नर्त्तन,
है कौन करे जो बन्द प्रिये?
रोके कौन? उठा है मानव,
गन्धमुग्ध, मधुअन्ध प्रिये।

दो दीवाने हो जब मग मे,
बाधा कौन जो कि ठहरे ?
दो प्रेमी हो, अनियारी गति हो,
दुनिया से कौन टरे ?
मृदुल चरण से ठेस लगा
जग को, आगे बढ आओ तो !
भरे कठ से प्रेमातुर हो,
प्रणय रागिनी गाओ तो !
देखोगी, कि स्वय दुनिया भी
नतमस्तक हो जायेगी।
जीत प्यार की होगी,
बन्धन कडी टूक हो जायेगी।

लोक-लाज, मर्यादा, भ्रम-विभ्रम,
जग के छल-छन्द प्रिये !
जीवन-गति को रोक सका है कौन ?
सहज निर्बन्ध प्रिये !

आज, आज अपना है,
कल की बात कौन जाने बोलो!
कल न रहेगी आयु दिवानी,
आज बेखुदी मे डोलो!
आज जवानी टीस उठी है,
वही पुराना दर्द उठा।
आज खून की बढी रवानी,
अपनापन बेपर्द उठा।
दो प्राणो का मिलन, इसी पर
जगती का अस्तित्व धरा।
फिर क्यो रो रोकर रक्खे हम,
अपने उर का घाव हरा?

एक बार साहस भर, कर ले,
यौवन को स्वच्छन्द प्रिये!
रोके कौन? उठा है मानव,
पिये महाआनन्द प्रिये!

किंतु, 'अहं' का ज्ञान, तुम्हीं हो,
जो कि मुझे दे पाओगी।
एक तुम्हीं, जो निज अंचल से,
अश्रु पोंछने आओगी।
मेरे धैर्य्य-लुप्त नर को—
डाटन दोगी, दुलराओगी।
भूलों को हँस कर सह लोगी,
सपनों में मुसकाओगी।
अपने अलकों की डोरी में—
बाँधे रहो मुझे रानी!
पलकों में मूँदो, हँसने दो—
यह जग कोरा विज्ञानी!

चलता ही रहता है जग में,
पाप-पुण्य का द्वन्द प्रिये!
रोके कौन? उठा है मानव,
नग्न, विकल, निर्बन्ध प्रिये!

अपने घर मे आग लगा लो,

आज जगी है जग मे ज्वाला।

अर्घ्यदान

ओ मेरे कवि, ओ स्वर-साधक!
भैरव राग सुनाओ, आओ!
महानाश की आज चुनौती,
ताण्डव का दिन, आगे आओ!
जान चुके परिरम्भ कुम्भ की
मदिरा का तुम मधु-आस्वादन!
अरुण प्रवाल सदृश अधरो पर,
टाँक चुके तुम अगणित चुम्बन!

केश-राशि, मुखचन्द्र, पयोधर,
कटि, सबका रस पान करो बस!
मिटनेवालो की बस्ती मे
अपने पर अभिमान करो बस!
देखो आज भिखारिन के
जर्जर बाहो का भी आलिंगन!
उस शोषित सौन्दर्य-परी के
शुष्क अधर का भी आमन्त्रण!

आज • कहाँ नागन-सी चोटी ?
कहाँ कुमुद से है मुक्तानन ?
भूखे शिशुओ के दशन से
क्षत-विक्षत है माता के स्तन !

तुम हो अग्नि-लोक अधिवासी,
भूत व्यर्थ है, आगत काला !
वर्तमान की ओर निहारो,
आज जगी है जग मे ज्वाला !

युग बीते मधु पीते-पीते
आज हलाहल पान करो तो!
एक बार नंगो, भिखमंगो की
ज्वाला का गान करो तो!
चाँदी के खन-खन पर नारी
प्रणय बेचती है बेचारी!
कौन बचाये लाज? अरक्षित
खिंचती द्रुपद - सुता की सारी!

भूखों के क्रन्दन से नगपति का
आसन भी डोल उठा है।
वह देखो, इस वर्तमान में
आगत का स्वर बोल उठा है!
तुम हो मानवता के पोषक,
युग - निर्माता, याद करो तो!
एक बार विध्वंस मचा दो,
नया देश आबाद करो तो!

ओ समर्थ, सत्तावालो को
अन्तिम ठेस लगाना होगा।
भूखे मन, दुर्बल तन लेकर
क्रान्ति-ध्वजा फहराना होगा।

एक बार तन्द्रा से जागे,
बेसुध जग, मधु पीनेवाला।
अपने घर मे आग लगा लो,
आज जगी है जग मे ज्वाला।

. अर्घ्यदान

आज विश्व-सघर्ष घना है,
कहाँ भागकर जाओगे तुम ?
दुनिया भर मे आग लगी है,
वसी कहाँ वजाओगे तुम ?
युग की माँग सुनो, पहचानो,
महाज्वाल से चलकर खेलो !
ओ शहीद, आगे बढना है,
जो कुछ आये, हँसकर झेलो।

नारी को सुरवा से ऊँचे
आज उठाना काम तुम्हारा।
हाडो में फिर से दधीचि का
बल भर जाना काम तुम्हारा।
मानवता का शख फूँक दो,
मुर्दो मे भी जागे जीवन !
रस-पुलकित जगती पर लहरे
फिर से अल्हड, उन्मद यौवन।

हँसने का सबल ले मानव
एक बार नाचे दीवाना!
मन-मन हो नवीन आराधन,
आज ध्वस हो जीर्ण, पुराना!

कण्ठ-कण्ठ मे गीत गुंजा दो
आज नये स्वर-तालोवाला!
अपने घर मे आग लगा लो,
आज जगी है जग मे ज्वाला।

कैसे कह दूं, किसकी सुधि है,
जो उठ उठ आती अन्तर मे ।

दिन भर चचल कोलाहलमय
जग मे फिरता मैं डगर-डगर,
सयम सावन मे भूल-भूल
अपने को, करता अगर-मगर।
तम का अचल फैलाती-सी
आ जाती है जब कठिन रात,
गिनते - गिनते नभ - नखत
विवश, चिन्तन मे हो जाता प्रभात।

कैसे कह दूँ, क्यो रो पडता है,
मन मेरा खग के स्वर मे ?
कैसे कह दूँ, किसकी सुधि है,
जो उठ-उठ आती अन्तर मे।

किसके पग-ध्वनि की आहट पा।
बेसुध में हो उठता मशान,
उर-द्वार खोल, पाँवड़े बिछा
पलकों के, स्वागतहित, अजान।
पर खुल जाते हैं मूँदे नयन
पल भर में घिरता चिर अभाव,
ऊषा की पुलकित आभा में
फिर हो जाता है हरा घाव।

कैसे यह शलभ बताये फिर,
क्या सुख है जलने के वर में?
कैसे कह दूँ, किसकी सुधि है
जो उठ-उठ आती अन्तर में।

जब विकल नयन देखने अवश
अपने समक्ष घन अन्धकार,
तब उठ-उठकर गिर पडता मैं
अपनी आकुल बाहे पसार।
बुझ सकी कभी मेरी तृष्णा ?
सच हुआ कभी मेरा सपना ?
मैं हूँ, मेरा दुर्भाग्य, और
साथी न यहाँ कोई अपना

रस से झर-झर यह मदिर-निशा,
है आग लगी मेरे घर मे !
कैसे कह दूँ, किसकी सुधि है
जो उठ-उठ आती अन्तर मे !

कोई होता, जब मैं सोता
बालों को सुहला तो देता।
मेरा दिन भर का थकित हृदय
पल भर को बहला तो देता।
जिसके तन का पा मधुर स्पर्श
खिल उठता उर शतदल क्षण भर,
जिसकी अनुराग-सुधा पीकर
मेरा कवि होता अजर-अमर।

कोई तो होता, पुलक-कम्प
भर देता जो मेरे नर में!
कैसे कह दूँ, किसकी सुधि है
जो उठ-उठ आती अन्तर में!

पावस की सूनी रिमझिम मे
जब रो उठता है पागल मन,
यह विज्ञानी जग क्या जाने
मै हो उठता कितना उन्मन ?
यो एकाकी चलते - चलते
है बीत रहे जीवन के दिन,
यह दूर नही, जब रह जाऊँ
मै जग मे एक कहानी बन।

मेरी ज्वाला बादल बनकर
जब छा जाती है अम्बर मे—
कैसे कह दूँ, तब टीस-टीस
उठती किसकी सुधि अन्तर मे !

सखि, यह लो, राका आई।
मृदु गन्धमुग्ध, मधुअन्ध,
निखिल जगती पर सुषमा छाई।

अर्घ्यदान

मैंने चाहा अपने को
खोकर पाना ।
सीखा अपनी दुनिया में
आग लगाना ।
मैं छल न सका,
फिर भी, अपने को रानी ।
मैं गा न सका,
आँसू छन्दों में गाना ।

चदक के मिस अगार, अरे,
यह कौन पिशाची लाई ।
सखि, यह लो, राका आई ।

सयम की सूनी घडियो मे,
गूँज उठा किसका आकुल स्वर!

अर्घ्यदान

आधी रात, तृषा दिग्वसना,
आत्म-समर्पण की मधु वेला!
अधरो पर अगार जलाये,
आज खडा कवि, मौन, अकेला!
प्रिय-पद-धूलि मिली, पल भर को,
राका भी वन गई सुहागन!
आज किसी के दरस परस से,
धन्य वने हैं तन्द्रा के क्षण!

आज खून की बढी रवानी,
टीस उठा है दर्द पुराना।
चल न सकेगा, आज सुहासिनि,
पाप-पुण्य का व्यर्थ वहाना!
अँगडाई लेकर उठ वैठा,
जब मेरा युग का सोया नर,
चुम्बन का निर्माल्य सजाये,
गूँज उठा किसका आकुल स्वर?

कहती हो, परवश हूँ, पूछूँ
कैसी लाज, कहाँ का बन्धन?
बाँध सकोगी आँधी मन मे?
रोक सकोगी जागृत यौवन?
इस मादक वय की अगूरो,
मस्त बनोगी खुद ही पीकर!
चल पाओगी जग मे, रानी
कैसे छाती के व्रण सी कर?

आत्म-दहन यह निभ न सकेगा,
चल न सकेगा अधिक प्रवचन।
तोडो मुग्धे, बन्द करो यह
पग स्वर्णिम नूपुर का झनझन।
आज धरित्री भी निर्वस्त्रा,
आज तना है नगा अम्बर!
मेरे पाँव बँधे है—फिर यह
गूंज उठा किसका कातर स्वर?

आज तरगो से फेनायित
क्षुब्ध तृषा-सागर का गर्जन।
ऊपर सस्कारो के वादल,
नीचे पग-पग पर डगमग मन।
खँडहर लेकर आज मगन मन,
टूट चुका है महल तुम्हारा।
भूल गई हो अपना अमृत,
पान करोगी विष की धारा।

कितने दिन के बाद मिली हो,
कुछ बोलो, कुछ मन को खोलो!
जागरूकता साध चुकी हो,
आज बेखुदी मे तो डोलो!
अपने को छलने का अभिनय,
यह पूनो का व्यर्थ निरादर!
तृप्ति देश का आज निमत्रण,
फिर किसका कैसा व्याकुल स्वर ?

सूखी स्मितियो के फूल लिये,
दृगजल से धोये दामन में,
निर्माल्य सजाकर लाया हूँ,
मेरे राजा, स्वीकार करो!
प्रतिदान भला कैसे मांगू?
मेरी ओ परदे की रानी!
इतना सतोष, कि मेरी हो,
ठुकरा दो चाहे प्यार करो!

है आज मरण का पर्व प्रिये,
अभिलाषाओ की होली है !
मेरे इस नन्हे से दिल पर,
जग की करुणा कब डोली है ?
मंजिल की मै क्या बात करूँ ?
जब पग पग पर मग है दुर्गम !
पल-पल छलने आता है
मानव होने के सपने का भ्रम !

जगती ने ढुलका दी मेरी,
वह अर्घ्यभरी मन की गगरी।
सूनी सूनी सी लगती है,
मेरे अरमानो की नगरी।
मेरी छाया तक छूने से,
जग की पावनता घबराती।
कुछ टूटी-फूटी आशाये
अभिलाषाये, मेरी थाती !

किस मुँह से यह मनुहार करूँ?
मेरी तृष्णा का भार हरो।
प्रतिदान भला कैसे माँगूं,
ठुकरा दो चाहे प्यार करो।

यौवन के कितने लघु-लघु दिन,
अपने जीवन मे खो डाले !
कितनी रगीन तितलियो के—
दामन, आँसू से धो डाले !
अपने छोटे से आँगन मे,
किसका-किसका सत्कार किया !
वरदान दिया, अभिशाप लिया,
उपहास मिला, पर प्यार किया !

पिघला न कभी कोई पत्थर,
जागा न कभी कोई सपना !
मैंने दुनिया को अपनाया,
मेरा न बना कोई अपना !
सब ओर उपेक्षित, अपमानित,
सब ओर निराशा का घेरा !
अपना रीता सम्बल लेकर
दर-दर देता रहता फेरा !

सच है घायल दिल है,
लेकिन कैसे कह दूं, उपचार करो।
इतना सतोष, कि मेरी हो,
ठुकरा दो चाहे प्यार करो।

लेकर कलक का भार आज, प्रिय
विता चुका छव्वीस वर्ष !
मैं वीतराग सन्यासी-सा,
गत राग, शोक, गत क्लेश, हर्ष !
मैं दीन-हीन वचक, मेरी रानी !
मुझ पर मत मान करो !
जीवन के थोडे से दिन,
मत निष्ठुरता पर अभिमान करो !

पी-पी कर मेरा हृदय-रुधिर,
जीती है पीडा मतवाली।
अक्षय है ओ सुन्दर, जिससे,
जग पग के मेहँदी की लाली।
जिस जिसने माँगा, दे डाला,
मैंने अपना मकरन्द प्रिये !
जग को अमृत दे, तिक्त
हलाहल को अधरो मे बन्द किये !

मैं नीलकण्ठ, तुम अन्नपूर्णा
का चाहो शृंगार भरो !
मेरी ओ परदे की रानी !
ठुकरा दो चाहे प्यार करो !

—

संगिनि ! आज कहाँ मेरा घर ?

चिन्ता है अपने-अपने की,
किसे व्यथा मेरे सपने की ?
जो उस रात बना पल भर में,
मिटा दूसरे ही क्षण, सत्वर ।

यह अभिशाप मिला मुझको ही,
जीवन से रहना विद्रोही ।
कैसे किसको संगिनि पाऊँ,
प्यार करे मुझको जो पल भर ?

अनियम पुञ्ज बना यह जीवन,
उच्छृङ्खलता जीवन का धन ।
इस विभूति की थाती लेकर,
डोल रहा जगती के पथ पर ।

संगिनि ! आज कहाँ मेरा घर ?

कल रही सपनो भरी वह रात ।

घिर रहे थे घन गगन में,
खो गया था स्वर विजन में ।
और उनरी थी दृगों में,
साँवली-सी, सजल प्रिय की,
सुधि लिये बरसात ।

स्वप्न बनकर कौन आया ?
कौन तन्द्रा मे समाया ?
किस छवी के स्पर्श मधु से,
खिल उठा, पुलकित मुंदे
दल खोल उर जलजात ?

कौन पिय है, कौन साजन ?
क्यो विकल उन्मन बना मन ?
देवता है कौन ? प्रतिपल,
चढ रहा निर्माल्य-सा
जिस पर, विवश यह गात ?

तुम जाती हो, जाओ रानी,

मेरा वरदान लिये जाओ !

शशि-खचित रात, यह दुग्ध-स्नात,
आई ज्वाला का ले संदेश !
मैं तृषावंत-सा डोल रहा,
तुम चलीं आज प्रिय दूर देश।
पल भर में ही जल उठे अधर,
जागी तृष्णा उद्दाम, प्रखर।
मानस के दर्पन पर आई
प्रिय की छाया, विद्युत् पग धर।

उस एक निमिष का स्पर्श,
हाथ पर अंगारे का भान हुआ !
चितवन का वह संकेत सजग,
अपनेपन पर अभिमान हुआ।
जाने के पहले एक बार
अपनी मुस्कान दिये जाओ !
क्या जाने कब फिर मिल पायें,
मेरा वरदान लिये जाओ।

मैं चिर-दिन का सस्कार-लुब्ध,
तुम भी हो बन्धन की रानी।
किस कुघडी मे बनकर आई
मुझ भिक्षुक के आगे दानी।
मैं आज कहाँ रक्खूँ प्रेयसि,
उन बाहो का मृदु आलिगन।
अवकाश कहाँ, देखूँ किसने
कर डाला पल मे सब अर्पण?

भीतर ज्वाला का हाहारव,
वासना नग्न, निर्बन्ध आज।
दो राहीं, जब है एक डगर,
फिर कौन, कहाँ की, तन्वि लाज?
मेरे गीतो का अन्तिम स्वर,
जाती हो, पान किये जाओ।
तुम जहाँ रहो, आबाद रहो,
मेरा वरदान लिये जाओ।

मैं कर लूँगा सन्तोष, तुम्हीं
मिटती-सी तस्वीर देख
कर लूँगा अनुभव दर्द तुम्हारा,
अपने उर की पीर देख!
निस्सग रात की घड़ियों में,
घिर आयेंगे दृग में बादल।
जब आलिंगन के लिए उठी
गिर जायेंगी बाहें पागल!

इतना होगा विश्वास, कि
तुम भी जाग रही होगी रानी!
पलकों मे घिर आऊँगा,
छलकूँगा नयनो मे बन पानी।
जाने के पहले एक बार बोलो,
मत मान किये जाओ!
'कल' ले आयेगा चिर-वियोग,
मेरा वरदान लिये जाओ!

हम दोनो वन्धन के प्राणी,
दोनो का रुद्ध रहा जीवन!

कितने प्राणो का खून पिये,
अपनी अनगिन बाहे पसार।
मरघट पुकार कहता, आओ,
देखो सुन्दरता की बजार!
हम आज महापथ के राही,
चल दिये चिरन्तन प्यास लिये।
शोलो से खेल रहा यौवन,
फिर भी इतना विश्वास प्रिये!
हम दोनो की तृष्णा लेकर,
उफनेगा क्षुब्ध महासागर!
दोनो की तप्त उसासो से,
अगार झरेगा वह अम्बर!

कब तक खाली जायेगा यह
शत-शत मानव उर का स्पन्दन?
हम दोनो बन्धन के प्राणी,
दोनो का रुद्ध रहा जीवन!

खिलने आई मुक्तानन पर,
मिट गई विवश स्मिति की रेखा।
अधरो ने तरलित अनल पिया,
नयनो ने कालिन्दी देखा।
कब हम दोनो आगे आये ?
कब हम दोनो मन खोल सके ?
कब हमने आश्वासन पाये ?
कब दोनो जी भर बोल सके ?
परिचय का वह लघु एक निमिप,
जीवन्त बन गया आत्म-दहन।
क्या जाने तुम कैसी होगी!
मै तो हूँ मूर्त बना क्रन्दन।

पी-पीकर अपना हृदय-रुधिर,
सोई है पीडा की नागन।
हम दोनो बन्धन के प्राणी,
दोनो का रुद्ध रहा जीवन!

अब आज नही रोना होगा,
देखो दुनिया आगे आई।
अब आज अगति का काम नही,
मानवता साथ प्रगति लाई।
युग की माँगो से मुँह फेरे,
किसकी छाती मे इतना बल?
भूखा रहना पुरुषत्व नही,
प्यासी रहने वाली पागल!
दोनो अपने को भूल गये,
दोनो ने अपनाई छलना।
हम दोनो पिजरे के पछी,
मानव है, पर भूले चलना!

जागो प्रेयसि, प्रतिदान चुकाने
आता है, देखो यौवन!
हम दोनो बन्धन के प्राणी,
दोनो का रुद्ध रहा जीवन!

आई सजनि, रात!

अब तो तजो मान!

बहती मलय-वात!

अब तक रखी तन्वि, मैंने विवश धीर,

जागी हृदय मे कहाँ की विसुध पीर।

पहले बुलाया निकट, अब किया दूर,

कब मे खडा हूँ तृषित नेह-सरि-तीर।

अब सह सकूँगा न आगे अधिक और,

कोमल हृदय पर निदय यह पदाघात।

आई सजनि रात!

दुनिया थकी सो रही, मैं रहा जाग;
तुम हो सजनि मौन, मैं हूँ लिये आग।
दे तक सकी तुम न स्मृति-चिह्न भी एक;
कैसे निकालूँ, कहो, तृप्ति का राग?
तुम बन प्रथम रश्मि, छू दो तनिक आज,
मैं खिल उठूँ बन प्रणय-प्रात-जलजात।
आई सजनि रात!

उस दिन दिया जो प्रणय का कठिन शूल,
अब तक न उसको सका हूँ प्रिये, भूल।
भ्रम था कि तुमने किया उस दिवस प्यार,
मेरे मधुर स्वप्न बीते, हुए धूल।
मेरा निवेदन अधूरा रहा, किन्तु
छाई दृगों में सजल श्याम बरसात।
आई सजनि रात!

———

मिलने का अवसर दोगी प्रिय!
मेरे उर के भरे घाव को
धीरे-धीरे धो दोगी प्रिय!

सह न सकूँगा डगमग पग ले
जग मे मैं एकाकी चलना,
पतझर पीत अधर पर मेरे
खिल न सकेगी अब स्मिति-छलना।

शून्य दृष्टि, अपलक पग-ध्वनि की,
बाट जोहता हूँ मैं रानी,
आखो ही आखो मे पानी
बनी प्रणय की पूर्ण कहानी।

सच कहता हूँ, बडी कठिन
होती है पगली पीर हिये की,
आज नही तो कल, मीरा-सी
प्रियतम के हित नाचोगी, प्रिय!
मिलने का अवसर दोगी, प्रिय!

उस दिन, जब मधु-ऋतु आई थी,
कोयल की कुहू पुकार हुई,
उस दिन, जब कलि अलि को रस दे
लुट गई, बिकी, बलिहार हुई।
उस दिन, जब प्यासे अधरों ने
अपनी तृष्णा को पहचाना,
उस दिन भी तो तुम जीती थीं,
उस दिन भी मेरी हार हुई।

उस दिन, जब पत्थर के उर की
कोमलता गलकर फूट चली,
पशुता के निर्दय चगुल से
सहसा मानवता छूट चली।
उस दिन तुम धीरे आई थी
सपने मे प्यार-दुलार लिये,
युग युग का सयम पिघला था,
बन्धन की कडियाँ टूट चली।

युग-युग से चलता आया हूँ,
युग-युग तक चलता जाऊँगा,
यह भी क्या निश्चय है
चलकर, चलने की सीमा पाऊँगा।
जीवन के अत-हीन पथ मे
सहयात्री-सा तुमको पाया;
सोचा था, रुककर एक ठौर
स्वर्णिम ससार बसाऊँगा।

शशि ने कब शीतलता छोडी,
रवि ने किस दिन छोडा जलना ?
अधरो ने कब तृष्णा छोडी,
आँखो ने कब छोडी छलना ?
सरिता की गति कब रुद्ध हुई,
मरु का तपना कब बन्द हुआ,
तब एक अभागा मानव ही
कब छोड सका अपना चलना ?

सावन की सूनी रजनी से
मधु-बूँदो की तकरार मची,
जग के उत्सुक-से प्राणो मे
मनसिज की जय-जयकार मची।
ऊषा के उजले आँगन मे
जब किरणे नर्तन-निरत हुई,
तब एक अकेले मेरे ही
उर मे क्यो हाहाकार मची ?

जग ने मुझसे मुँह फेर लिया,
मैं जगती से मुँह मोड चला,
जिस शून्य दिशा से आया था,
उस शून्य दिशा की ओर चला।
वरदान न मिलना था, न मिला,
उलटे जग का अभिशाप बना,
जग की निर्मल चादर रख दी,
अपनी कमली को ओढ चला।

मेरी करुणा से ओत-प्रोत,
इस मानव-जग का ओर-छोर,
मेरी आखो मे लेती है शत-शत
गगा यमुना हिलोर।
मेरी आहो मे आग भरी,
रोदन मे घन सावन-प्लावन,
कब रोक सकी रे मुझे यहाँ
प्रिय के बाहो की मृदुल डोर?

मुझसे मधुबाला रूठ गई,
मधुशाला के पट बन्द हुए,
अपने से कर विद्रोह स्वय
मेरे अणु-अणु स्वच्छन्द हुए।
मै किस विधना का कटु विधान,
किस नियति-नटी का भ्रू-विलास?
मेरी लघु हस्ती को लेकर
इस जग मे कितने द्वन्द हुए!

जिसको दुनिया न समझ पाई,
मै हूँ वह अर्थ-हीन मानव,
जो औरो को कुछ दे न सका
मै हूँ वह दीन-हीन मानव।
मिटनेवालो की वस्ती मे
मेरा क्षण-भगुर क्या परिचय!
मै दूर-देश का राही हूँ,
मै हूँ अस्तित्व-हीन मानव।

मुझको एकाकी रहने दो,
मैं पा न सकूँगा प्यार यहाँ;
क्या समझे था, बन जायेगा
दो पल हँस लेना भार यहाँ !
मैं सीधा-सादा मानव हूँ,
देवत्व कहाँ से लाऊँ मैं;
आदर्शवाद की वेडी मे
वँध रही आज मनुहार यहाँ ।

यह वर्तमान क्या है मेरा,
झिलमिल करता इसमे अतीत;
यह वर्तमान क्या है मेरा,
आगत इसमे गा रहा गीत ।
गत-आगत की क्या चिन्ता है,
जब वर्तमान ही है असह्य;
प्रत्येक श्वास के साथ-साथ
जीवन मेरा यह रहा बीत ।

वह रूप, हाँ वही रूप, वही तो

है मेरे पथ का पाप हुआ,

यह हृदय, हाँ यही हृदय

हमारे जीवन का अभिशाप हुआ।

सुन्दरता के सँग बैठ यहाँ

दो पल मुसकाना भूल हुई;

पल-भर का यह अपराध, अरे!

चिर-जीवन का सन्ताप हुआ।

जीवन मे लेकर दर्द मधुर,

आँखो मे लेकर नीर प्रिये!

अधरो मे लेकर जलन,

हृदय मे ले तेरी तस्वीर प्रिये!

अब तक तो जीता आया हूँ,

पर अब कब तक जीता जाऊँ,

प्रतिपल बढती ही जाती है

अतस मे कोई पीर प्रिये!

मन मे कुछ अलख जगाता-सा
उस महाप्रलय की ओर चला,
दो विदा, क्षमा हो भूल आज,
इस पावन जग को छोड़ चला।
आवाद रहे यह पावनता,
मैं एक अपावन जाता हूँ,
जो कुछ थोडा-सा नाता था,
उस नाते को भी तोड चला !

जो आया है, वह जायेगा,
यह नियति-नटी का क्रम अशेष,
धीरे धीरे होता रहता,
जीवन-दीपक का नेह शेष।
मजनूं कितने मिट गये,
मिटे फरहाद एक से एक यहाँ,
मै भी उस पथ का राही हूँ,
पथ दुर्गम है, वह दूर देश।

आज चले किस ओर प्रवासी ?

सूना नभ है, शून्य धरा है,

मध्य चिरन्तन शून्य भरा है ।

जाओगे किस ओर, अरे,

छाई है चारो ओर उदासी ।

जिस घर को तुम छोड चले हो,
जिस पथ पर बढने निकले हो,
उसका आदि-अंत अविदित है,
ओ चलने के चिर-अभ्यासी !

कौन व्यथा कसकी है मन मे ?
कौन आग जागी जीवन मे ?
यौवन के इस प्रथम प्रहर मे
जो वन निकले हो सन्यासी !
आज चले किस ओर प्रवासी ?

आज दबती न दबाये टीस;
विसुध इस बेला मे मधु-प्राण ।
अरे, मै लघु मानव लाचार,
रहा हूँ, कब से जग मे डोल;
वेदना की अमराई बीच
रही काली कोयलिया बोल ।

ज्योत्स्ना की अविरल रस-धार
रहा हूँ अपलक नयनो देख;
सतत ज्योतिर्मय अबर बीच
नियति निर्मम की काली रेख।
दूर पर वशी की मद तान
छेडती तुम, मै मुग्ध अधीर
चल पडा डग-मग पग, अनजान,
लिये सँग अरमानो की भीर ।

हँस पडी मेरा साहस देख,
रो पडा मेरा आहत प्यार,
चली तुम कर मेरा उपहास,
खडा मै लिये प्रणय की हार।

लिपट उन चरणो मे सुकुमारि,
बने नूपुर, मेरे अरमान,
तुम्हारा प्रति मृदु-पद-निक्षेप
वजा देता उनको अनजान ।

हरा रे अभी, भरा था कहाँ,
कलेजे का मेरा वह घाव,
टीसता और तुम्हारा देवि;
मौन यह तिरस्कार का भाव।

प्रकृति का अणु-अणु, कण-कण आज
खोल स्वागत-हित हिय के द्वार
लुटाता मधु, वसुधा चुपचाप
देखती यह पगलो का प्यार ।

दूर तुम रूपसि, मैं भी दूर,
बीच मे यह सूना व्यवधान;
अरे श्यामा, तू आ मत आज
सजाकर सौरभ का परिधान।
लहर से लहर बँधी है आज
लता तरु के आलिगन-पाश,
किरण-परियो से लिपटा मौन,
सो रहा है अलसित आकाश।

विश्व तन्द्रिल, मैं ही उद्‌भ्रात,
गा रहा हूँ विहाग के गान,
विकल, विस्मित-से, बेसुध आज
खोजते किस पिय को यह प्राण ?
आज कह लेने दो सब देवि,
न रोको जीवन की यह साध,
एक पल का कर लेना प्यार,
बना जो चिर-दिन का अपराध।

आज मेरा उच्छृङ्खल प्यार,
चला जग के सब बन्धन छोड,
लाज की सीमा हुई विलीन,
दिया आदर्शों का गढ तोड ।

चरण का शिजन-रव जह देवि,
रहा कानो मे अमृत घोल,
आज स्मृति के प्रागण मे मुक्त,
रही है कोई प्रतिमा डोल ।

सजनि, वह बिखरा कुन्तल-जाल
तुम्हारा, सुखद स्पर्श सुकुमार--
उँगलियो का, वह आकुल दृष्टि,
अरे वह मौन हृदय का प्यार।

आज सब व्यर्थ, पिपासित कठ,
करेगा बरबस विप का पान,
बनी तुम कैसी आज कठोर,
मिटा मै तिल-तिलकर अनजान।

सुनो, लो सुन लो पल-भर देवि,
आज मेरी पागल मनुहार,
तुम्हे अपना अपनापन भूल
किया था कभी स्वप्न मे प्यार।

किन्तु वह स्वप्न स्वप्न ही रहा,
सत्य वह कब हो पाया, हाय!
तुम्हारी छाया के ही पास
डोलता रहा निपट असहाय।

रही तुम सदा पहेली मौन,
न खोला अपने उर का द्वार,
सदा छलती ही आई, किन्तु
लिया मेरा सब कुछ उपहार।

दे गई मुझे व्यथा का दान,
दे गई जलने का अभिशाप,
न जाना था मैंने यह तन्वि,
लगेगा हँस लेने का पाप!

आह! मानव का निर्बल प्राण,
तुझे क्यो भावुकता का दान ?
वन गया एक अमिट अभिशाप,
नियति का निर्मम एक विधान।
आज यह ज्वालामय सगीत,
विकल प्राणो का हाहाकार,
अरे, इस निर्दय जगती बीच,
कहाँ पायेगा निज आधार ?

आज जब अपने ही अनजान
वने पल भर मे, क्या विश्वास
कि जग न करेगा मेरी दीन
प्याम का रे निष्ठुर उपहास!
सुनाऊँ किसे दर्द का हाल,
दिखाऊँ किसे हृदय को चीर,
याद की दीवारो के बीच
घिरी, दुबकी किसकी तस्वीर!

एक दृग में लेकर मुसकान,
एक मे लेकर पावस-धार,
चला मैं निज सपनो को बॉध
कही इस दुनिया के पार।

कभी यदि ऑसू की दो बूँद
गिरा दोगी कर मेरी याद,
हृदय की उजडी बस्ती तन्वि,
बनेगी पल भर को आवाद!

ओ कलक के विन्दु !
भाल पर युग-युग मे मेरे तू स्थिर है,
ज्यो सुहाग के दुर्ग शिखर पर
नित-नित रक्त-पताका-सा सिन्दूर
कामिनी का फहराता।
आज तुझे माथे पर धारे,
सच कह दूँ, मैं पुलक-पुलक उठता हूँ मन में।
मुझे रही कब साध, मिले तू—
किन्तु,
भिखारी के घर आये हो जैसे भगवान,
आगया है जब।
कोई दीन दरिद्र अयाचित ही
पा जाये कोई अतुल कोष
पा गया तुझे जब।

आ, तेरा स्वागत है।

तू बन शक्ति, स्फूर्ति,

प्रेरणा-केन्द्र जीवन की,

मुझको प्रगति दिये चल।

असफल हूँ कि सफल, क्या जानूँ!

मञ्ज़िल दूर, तिमिरमय पथ,

मैं पग-पग अपने 'अहभाव' का ज्ञान लिये,

अभिमान लिये,

बढता ही जाऊँ एकाकी।

है सीमाहीन यात्रा मेरी।

तुझे सूम के सोने-सा ही अक लगाये,

ज्यो अखड तू दीप, रक्त से

अपने ही त्यो सतत जलाये,

जगती का अभिशाप,

विवश, अञ्चल मे बाँधे,

वारिद-सा दानी बन,

नित वरदान लुटाये।

मेरा मानव आज नही

लज्जित अपने पर।

पूजा-बल से 'पत्थर' को भगवान् बनाकर,
मैंने कितने अश्रु-पूत निर्माल्य चढाये !
तिल-तिल कर मिट कर भी मैंने,
जीवन पर अभिमान किया है।

तूफानो मे गान किया है।
सूनें मे रो-रोकर, जग को
मुसकानो का दान दिया है।

सत्य न हो सपना, तो भी क्या ?
कौन बना 'अपना' ? तो भी क्या ?
कालकूट कण्ठस्थ स्वय कर,
अमिय सुधारस दान किया है।

किन्तु,
मिला उपहार मुझे यह, सेवाओ का,
सतत साधना का, मिटने का,
'पत्थर' की पूजा करने का !
नही दुःख है, यह तो जग मे होता आया।
कहीं धूल के हीरे का भी
मूल्य आँक पाया है कोई ?
अमिय-पान कर फूल रहे थे देव सभी जब,

तिक्त हलाहल पीनेवाले थे बस,
योगी शकर ही तो।
शुभ्र, श्वेत मस्तक पर जग-जन
नही चाहते तुझे सजाना।
नही चाहते 'गोरवमय' होना
तुझसे जब,
आ तू मेरे पास, तिरस्कृत
नही करूँगा मै तुझको,
जग के प्राणी अज्ञान भरे है।
भूल गये वे, पूर्णचन्द्र मे भी
कलक का स्थान अमर है।
भूल गये वे, फूलो के सँग काँटो का अस्तित्व
सत्य है एक चिरन्तन।,
तू मेरे पथ का ध्रुवतारा।
ओ कलक के बिन्दु, अमिट हो।
मै तुझ पर, तू मुझसे गर्वित रहे सदा ही।